

## Rajapaksa challenge for Delhi in Lanka

### ET Editorials



The election of former defence minister Gotabaya Rajapaksa, brother of former president Mahinda Rajapaksa, as Sri Lanka's president is an important development for the region and presents new diplomatic challenges for New Delhi. Like his brother, the new Sri Lankan president was close to China. His party, as well as his brother's government in the past, fed on Sinhala chauvinism, to the detriment of the island nation's Tamil and Muslim minorities. It is possible that Rajapaksa would like to change course and build better relations with India. New Delhi must prepare for a pro-China tilt in Colombo, some spillover of Lanka's Tamil politics to Tamil Nadu and to nurture any green shoot of

renewed friendship with India.

India must act as a constructive partner in the face of the likelihood of continued political tussle in Sri Lanka till the November 2020 elections, possible repeal of amendments that moved Sri Lanka to a parliamentary democracy, the island's economic and ethnic woes, to provide Rajapaksa with a viable alternative partnership to Mahinda Rajapaksa's embrace of China that resulted in a huge debt burden. The year-long political tussle between President Maithripala Sirisena and Prime Minister Ranil Wickremesinghe and the government's failure to prevent the ISIS-inspired Easter attack in April, despite multiple credible warnings, helped Rajapaksa beat rival Sajith Premadasa. His real test will be how he deals with the economy and how he seeks to deal with the ethnic divide.

The new president can expect some global headwinds, given his pledge not to honour Sri Lanka's commitments to the United Nations Human Rights Council and the allegations of war crimes against him and his brother. India's support would help him navigate these choppy waters.



## संपादकीय

वैश्विक मंदी तेजी से भारत को भी अपने लौहपाश में जकड़ सकती है। सरकार सक्षमता और सही सोच से इस संकट से देश को निकाल सकती है, बशर्ते वह हकीकत के प्रति 'शुतुरमुर्गी भाव' न रखे। 2009 में भी ऐसा संकट था, लेकिन भारत उससे उबर गया था। आज भी जरूरत है इस मंदी के चक्र को तोड़ने की और तरीका एक ही है। कृषि और उससे जुड़े लोगों के हाथ में पैसा जाए, जो देश की आबादी का 67 प्रतिशत हैं। सरकार की ही ताजा रिपोर्ट के अनुसार ट्रैक्टर, मोटरसाइकिल ही नहीं, रोजाना प्रयोग वाली उपभोक्ता सामग्री (तेल, साबुन आदि) की मांग ग्रामीण भारत में लगातार घटती जा रही है। यह क्षेत्र देश में 5 प्रतिशत रोजगार देता है। अगर मांग कम होगी तो उद्योग उत्पादन कम करेंगे और बेरोजगारी बढ़ेगी। उधर, देश की वित्तमंत्री ने एक साक्षात्कार में कहा है कि बड़ी कार कंपनियों का कहना है कि उनके उद्योग में कोई दिक्कत नहीं है। शायद कृषिमंत्री उन्हें बता सकें कि धान के बाद अब गेहूं की खेती का क्षेत्र भी घट गया है। मंदी बड़ी कार के उपभोक्ता से नहीं, बल्कि ग्रामीण भारत की क्रय-शक्ति से तय होती है। भारत में सोने की कुल खरीद का आधा ग्रामीण भारत करता है। उसमें भी कमी आई है। एक अन्य सरकारी आंकड़ा भी सरकार को चिंतित करने के लिए काफी होना चाहिए। विद्युत उत्पादन गिर रहा है, क्योंकि शहरी मध्यम वर्ग ही नहीं उद्योगों से भी मांग कम आ रही है, वे अपना उत्पादन कम करने लगे हैं। करीब 133 विद्युत इकाइयां ठप करनी पड़ी हैं। आज देश में 3.63 लाख मेगावाट बिजली की उत्पादन क्षमता के मुकाबले पिछले 7 नवंबर को मांग मात्र 1.88 लाख मेगावाट की थी। अरबों रुपए से बने पॉवर प्लांट अगर बंद हैं तो स्थिति समझना मुश्किल नहीं होगी। औद्योगिक राज्य महाराष्ट्र और गुजरात में यह मांग सबसे ज्यादा (क्रमशः 22 और 19 प्रतिशत) गिरी है। लब्बो-लुआब यह कि सरकार खुशफहमी छोड़कर देश को आसन्न आर्थिक मंदी के अभेद्य चक्रव्यूह में फंसने से पहले बाहर लाए वरना देरी महंगी पड़ेगी। सीएमआईई की रिपोर्ट ने कुछ हफ्ते पहले ही आगाह किया था कि मनरेगा में युवकों की संख्या अचानक बढ़ रही है अर्थात् शहरों में नौकरियां जाने के बाद ये युवा फिर गांव की ओर पलायन कर रहे हैं। मंदी की मार सबसे ज्यादा गरीब झेलता है, क्योंकि उसकी आजीविका चली जाती है। संकेत बेहद चिंताजनक हैं।

*Date: 19-11-19*

## धर्मों में समरसता की रोल मॉडल हैं हमारी सेनाएं

**सार्वजनिक तौर पर सैनिकों के धर्म को ही मानता है कमांडिंग ऑफिसर, अपना धर्म सिर्फ निजता में**

**लेफ्टि. जनरल एसए हसनैन, कश्मीर में 15वीं कोर के पूर्व कमांडर**

हाल ही में मुझे एक प्रमुख केंद्रीय विश्वविद्यालय ने विभिन्न धर्मों के बीच संवाद और समरता पर आयोजित सम्मेलन में आमंत्रित किया। मैंने इसे तत्काल ही स्वीकार कर लिया, क्योंकि सामाजिक वातावरण को संवेदनशील बनाने जैसी सकारात्मक गतिविधियों में ऐसे संस्थानों को शामिल होते हुए कम ही पाया जाता है। खासकर तब, जबकि विविधता का

सम्मान करने की गंभीर जरूरत महसूस हो रही है। अनेकता और विविधता का सम्मान करने में भारत एक आदर्श उदाहरण रहा है, लेकिन हमें इस उपलब्धि को ऐसे ही नहीं ले लेना चाहिए।

जब मैंने अपने मेजबान को बताया कि मैं किस थीम पर बात करूंगा तो वे चकित थे। मैंने जो विषय चुना था, वह था- 'राष्ट्रीय अंतरधार्मिक समरसता के रोल मॉडल भारतीय सशस्त्र बल'। कुछ साल पहले जब देश के कुछ हिस्सों में धर्म आधारित कुछ सांप्रदायिक चुनौतियां थीं तो मैंने मीडिया में लिखी एक टिप्पणी का समापन इस सलाह के साथ किया था कि 'जब कभी भारत को अपनी विशाल जनसांख्यिक विविधता की वजह से किसी चुनौतीपूर्ण स्थिति का सामना करना पड़े तो उसे प्रेरणा के लिए सिर्फ अपने सशस्त्र बलों के पास जाना चाहिए; वहां कुछ नहीं बदलता और अगर कुछ होता भी है तो बेहतरी के लिए'। यह टिप्पणी सोशल मीडिया पर वायरल हो गई और इस पर अनेक सकारात्मक कमेंट भी थे। मैं इस विषय पर ज्यादा जोर इसलिए देता हूं, क्योंकि मेरा मानना है कि भारत और यहां के लोग हमारी सेनाओं के इस गुण को बस सतही तौर पर ही जानते हैं। मैं अपनी हर चर्चा में कहता हूं कि हर यूनिट में एक 'सर्व धर्म स्थल' होता है और किसी भी एक धर्म के 120 सैनिक होने पर वे अपने धार्मिक मामलों में मार्गदर्शन के लिए एक धार्मिक शिक्षक के अधिकारी हो जाते हैं। कई यूनिटों में एक से अधिक धार्मिक शिक्षक होते हैं। ये एक पंडित, एक मौलवी और एक ग्रंथी होते हैं। यहां पर रेजीमेंटल सेंटरों की अटेस्टेशन परेड देखना अत्यंत ही आकर्षक होता है, जब सभी धर्मों के धार्मिक ग्रंथों की प्रार्थना का परंपरापूर्वक उच्चारण होता है।

यह अनुमान लगाना अच्छा हो सकता है कि एक बंद पनडुब्बी में अलग-अलग धर्मों के नाविक किस तरह से साथ काम करते हैं। एक फायटर पायलट का अपने ईश्वर में उतना ही विश्वास होना चाहिए, जितना कि उसके विमान को तकनीकी तौर पर सक्षम बनाने वाले दूसरे धर्म के टेक्निशियन का। सर्दियों में नियंत्रण रेखा पर बाकी दुनिया से कटी चौकी पर मायनस 35 डिग्री तापमान पर न तो कोई रसोइए के धर्म के बारे में चिंता करता है और न ही साथी द्वारा खाली किए गए उस स्लीपिंग बैग के बारे में जिसमें ड्यूटी समाप्त होने बाद दूसरा सैनिक सोने जा रहा है। किसी भी भारतीय के लिए यह देखना रोचक हो सकता है कि जब भी कोई यूनिट एक जगह से दूसरी जगह पर जाती है तो सभी धर्मों के धार्मिक प्रतीक हमेशा सबसे पहले वाहन में होते हैं। यदि आपको कभी नियंत्रण रेखा पर जाने का मौका मिले तो आपको यह देकर आश्चर्य होगा कि वहां पर बड़ी संख्या में मौजूद सूफी पीर बाबाओं की मजारों की देखरेख स्थानीय यूनिट द्वारा की जाती है और इन यूनिटों में कोई मुस्लिम सैनिक भी नहीं होता है। गुरुवार को यूनिट के पंडितजी, ग्रंथी या कोई और धार्मिक शिक्षक इन मजारों पर इस्लामिक प्रार्थना पढ़ता है। किसी मौलवी की गैर मौजूदगी में ग्रंथी द्वारा ईद की नमाज पढ़वाना अथवा किसी मौलवी द्वारा जनमाष्टमी पर भगवान कृष्ण के जन्म की घोषणा करना जरा भी असामान्य नहीं है।

अपनी पूरी हिंदू यूनिट में मैं अकेला मुसलमान था। लेकिन, मंदिर में पूजा मेरे आने पर ही शुरू होती थी और मेरे आरती करने के बाद ही आरती की थाली बाकी किसी के पास जाती थी। मुझे इस बात पर गर्व होता है, जब मैं यह कहता हूं कि अमरनाथ यात्रा के मेरे रिकॉर्ड को कोई नहीं तोड़ सकता। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि इस तरह प्रक्रियाएं सभी धर्मों के बारे में थीं। ग्रेनेडियर्स और राजपूताना रायफल्स की पूरी मुस्लिम सब यूनिट में सिख, हिंदू या ईसाई कमांडिंग ऑफिसर रमजान में पूरे 30 दिन रोजे रखते हैं और पूरे विश्वास के साथ नमाज पढ़ते हैं। सेना में एक आम बात कही जाती है कि सैनिकों के धर्म को ही उनको कमांड करने वाला ऑफिसर मानता है। वह अपने निजी धर्म को अकेले में मान सकता है। बिना किसी संदेह के जिस तरह से सैन्य बलों में धर्म को हैंडल किया जाता है वह इसे राष्ट्रीय रोल मॉडल बनाता है। ईश्वर में विश्वास मनुष्य को पवित्र, अनुशासित और दूसरों का ध्यान रखने वाला बनाता है।

योद्धाओं का भरोसा है कि यह मायने नहीं रखता कि आप किस ईश्वर की पूजा करते हो और कैसे। क्या भारत इस मॉडल को अपनाएगा।

# नईदुनिया

Date:19-11-19

## परियोजनाओं की जड़ता तोड़ने के जतन

डॉ. भरत झुनझुनवाला , (लेखक वरिष्ठ अर्थशास्त्री एवं आइआइएम, बंगलूरु के पूर्व प्रोफेसर हैं)



रियल एस्टेट क्षेत्र को मुश्किलों से उबारने के लिए केंद्र सरकार ने 25,000 करोड़ रुपये की राहत देने वाली योजना पेश की है। अहम सवाल यह है कि क्या इससे समस्या सुलझेगी या और ज्यादा उलझ जाएगी? चलिए एक मामले से इसकी पड़ताल करते हैं। मान लीजिए कि मध्यम श्रेणी के एक बिल्डर ने 300 करोड़ रुपये में जमीन खरीदी। इस पर फ्लैट बनाकर वह उन्हें 1,500 करोड़ रुपये में बेचना चाहते थे। भूमि का मूल्य 300 करोड़, फ्लैट बनाने की लागत 900 करोड़ और उनका मुनाफा 300 करोड़ था। उन्होंने 1,200 करोड़ के फ्लैट बेच दिए। इसमें प्राप्त 1,200 करोड़ में से 600 करोड़

उन्होंने परियोजना को पूरा करने में खर्च कर दिए। वहीं 600 करोड़ से अपने अगले प्रोजेक्ट के लिए जमीन खरीद ली, लेकिन प्रोजेक्ट को पूरा करने के लिए 900 करोड़ की जरूरत थी। वह प्रोजेक्ट पूरा नहीं कर सके। इसी बीच नोटबंदी और रियल एस्टेट का नया कानून रेशा लागू हो गए। बाजार से काला धन गायब हो गया। प्रॉपर्टी की मांग कम हो गई। नतीजतन दाम गिर गए। उनके दोनों प्रोजेक्ट फंस गए। ऐसा इसलिए, क्योंकि वह पुरानी परियोजना के शेष 300 करोड़ रुपये के फ्लैट नहीं बेच पाए। वहीं बाजार में गिरी कीमतों के चलते नया प्रोजेक्ट भी अधर में लटक गया। उसके लिए जमीन खरीदने पर खर्च किए गए उनके 600 करोड़ रुपये भी फंस गए। मेरे हिसाब से इसमें बिल्डर की 'गलती' सिर्फ इतनी थी कि उन्होंने 900 करोड़ के जो फ्लैट बेचे, उनसे नई भूमि को पहले खरीदा और प्रोजेक्ट को पूरा बाद में करने का फैसला किया, लेकिन ध्यान रहे कि तब बिल्डरों में यही तौर-तरीका प्रचलित था।

इस पृष्ठभूमि में सरकार ने योजना बनाई है कि अटकी हुई परियोजनाओं को वित्तीय सहायता देकर उन्हें उबारा जाए। जैसे उपरोक्त मामले में किसी परियोजना को पूरा करने के लिए बिल्डर को 300 करोड़ रुपये की दरकार है। वह यह रकम नहीं जुटा पा रहे। ऐसे में सरकारी मदद से मिलने वाली रकम से वह अपनी परियोजना पूरी कर सकते हैं। इससे खरीदारों को भी उनके फ्लैट मिल जाएंगे। इस तरह तमाम अटकी हुई परियोजनाओं की नैया पार लग जाएगी।

यह सही कदम होगा, लेकिन इससे प्रॉपर्टी क्षेत्र की समस्या और गहराएगी। कारण यह कि बिल्डर प्रोजेक्ट को पूरा करेगा और 300 करोड़ के नए फ्लैट बाजार में उपलब्ध हो जाएंगे। बाजार में पहले से ही काफी अधिक आपूर्ति है। जानकारों के अनुसार देश में तकरीबन 13 लाख करोड़ रुपये के अनबिके मकान ग्राहकों की बाट जोह रहे हैं। इसमें 300 करोड़ रुपये जैसी और संपत्तियों के दाम और जुड़ जाएंगे। इससे दाम और घटेंगे जिससे संपत्ति बाजार का संकट और बढ़ता जाएगा। ऐसी स्थिति में रेरा कानून के क्रियान्वयन पर विचार करना चाहिए। समस्या यही है कि यदि बिल्डर प्रोजेक्ट को पूरा नहीं करता और खरीदार विवाद खड़ा करते हैं तो मामला अदालत में जाएगा और हमारी न्याय प्रणाली में त्वरित न्याय नहीं मिलता। इससे मामला लटकेगा। बिल्डर पर ब्याज का बोझ बढ़ेगा तो खरीदार की रकम भी फंसी रहेगी।

यहां हमें चीन से सबक लेना चाहिए। एक भारतीय उद्यमी ने बताया कि चीन में किसी उद्यमी की फैक्ट्री की भूमि का सरकार को अधिग्रहण करना था। चूंकि वहां हवाई पट्टी बननी थी और सरकार द्वारा उद्यमी को नोटिस दिया गया कि वह छह महीने में अपनी फैक्ट्री हटा लें। इसके बाद अधिकारियों की एक टीम उनके पास चर्चा के लिए गई। उद्यमी ने कहा कि फैक्ट्री की मौजूदा लागत 10 करोड़ युआन है और नए स्थान पर यही फैक्ट्री लगाने के लिए 13 करोड़ युआन की जरूरत है। सरकारी टीम ने उन्हें तुरंत 14 करोड़ युआन दे दिए और एक करोड़ युआन की घूस ले ली। शेष 13 करोड़ युआन से उद्यमी ने दूसरे स्थान पर अपनी फैक्ट्री लगा ली।

भारत में भी ऐसी त्वरित व्यवस्था बनानी चाहिए। साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाए कि उसमें घूस न ली जाए। संकट में पड़े प्रोजेक्ट के लिए सरकार को खरीदारों, बिल्डरों और बैंकों के साथ मिलकर निर्णय करना चाहिए। तीनों पक्षों को मजबूर करना चाहिए कि वे अपने एक अंश का घाटा वहन करें। इससे प्रोजेक्ट पूरे हो जाएंगे और मामला समाप्त हो जाएगा। हमें समझना चाहिए कि लटके हुए प्रोजेक्ट में मूल प्रश्न पूंजी की उपलब्धता का नहीं, बल्कि प्रोजेक्ट की लागत का है जो बाजार मूल्य से ऊंची है। स्वाभाविक है कि बिल्डर लागत से कम दाम पर नहीं बेच सकते। उन्हें भी देनदारी चुकानी है। वहीं खरीदार भी समझौता नहीं करता, क्योंकि वह रेरा के तहत अपने अधिकारों को लेकर सजग है। ऐसे में बैंक और खरीदारों के दबाव में बिल्डर के पास कोई रास्ता नहीं होता कि वह प्रोजेक्ट को पूरा करके आगे बढ़े। इसीलिए तीनों पक्षों को बैठकर सरकार को यह तय करना चाहिए कि बिल्डर, बैंक और खरीदार कितना घाटा बर्दाश्त करेंगे। इस पर सहमति के साथ ही इसका पटाक्षेप हो जाना चाहिए। इसके लिए सरकार 25,000 करोड़ रुपये का पैकेज देकर अपने ऊपर ही बोझ बढ़ा रही है। वैसे भी इस तात्कालिक राहत से मूल समस्या हल नहीं होने वाली। असल समस्या यही है कि आज बाजार में प्रॉपर्टी की मांग कम हो गई है।

सरकार को अनबिके फ्लैटों के मामले में बैंकों और बिल्डरों के साथ मिलकर चर्चा करनी चाहिए ताकि उनकी कीमतें कम होकर उनकी बिक्री की राह खुल सके। इससे हालात कुछ बेहतर तो होंगे, लेकिन काफी कुछ करने के लिए शेष है, क्योंकि स्थिति बहुत विकट है। केंद्र के 25,000 करोड़ रुपये के पैकेज से तो बाजार में आपूर्ति ही और बढ़ेगी, जबकि समस्या को सुलझाना है तो मांग में बढ़ोतरी करनी होगी।

यह मसला व्यापक आर्थिक नीति का है। सरकार की मेक इन इंडिया जैसी बड़े उद्योगों को बढ़ावा देने की नीति का परिणाम है कि आज छोटे उद्योग दबाव में हैं। वहीं खुले व्यापार की नीति से देसी बाजार सस्ते विदेशी बाजारों से पटे हैं। इससे उद्योगों पर दबाव और बढ़ रहा है। उनके द्वारा रोजगार सृजित नहीं हो रहे हैं। रोजगार सृजित न होने के कारण आम जनता के पास क्रय शक्ति का अभाव है। रियल एस्टेट की मांग का भी इससे सीधा सरोकार है। ऐसे में जब तक हम छोटे उद्योगों को पुनर्जीवित करने की व्यवस्था नहीं करेंगे तब तक प्रॉपर्टी की मांग में आशातीत बढ़ोतरी नहीं होगी।



इसके लिए आर्थिक मोर्चे पर व्यापक कदम उठाने होंगे, अन्यथा 25,000 करोड़ रुपये की इस मौजूदा योजना से मकानों की आपूर्ति बढ़ेगी, प्रॉपर्टी के दाम गिरेंगे और मकान बिकेंगे नहीं। इससे संकट और गहराता जाएगा। इसलिए सरकार को लटकी हुई परियोजनाओं पर बैंकों, खरीदारों और बिल्डरों के साथ बैठकर कुछ स्थाई समाधान निकालना होगा। साथ ही अर्थव्यवस्था में छोटे उद्योग को संरक्षण देकर मांग को उत्पन्न करने के लिए प्रयास करने चाहिए।

## बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:19-11-19

### जल परिवहन पर देना होगा अधिक ध्यान

भारत में जल परिवहन में यह क्षमता है कि वह सामान लाने ले जाने की समस्या का समाधान कर सके। इस विषय पर विस्तार से जानकारी दे रहे हैं

#### विनायक चटर्जी

इस वर्ष जनवरी में केंद्रीय नौवहन मंत्री नितिन गडकरी तथा रेल मंत्री पीयूष गोयल ने कांडला बंदरगाह से मंगलूरु और कोच्चि के रास्ते तूतीकोरिन तक के लिए कंटेनर कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया (कॉनकॉर)की तटीय माल नौवहन सेवा को हरी झंडी दिखाकर रवाना किया था। यहां प्रयोग किए गए प्रतीक अत्यंत अहम हैं। कॉनकॉर भारतीय रेल की कंपनी है जो स्पष्ट रूप से तटीय नौवहन के लिए बनाई गई है। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि दो केंद्रीय मंत्री (दो ऐसे मंत्री जो अहम बुनियादी क्षेत्रों के परिवहन को निर्धारित करते हैं) इस अवसर पर उपस्थित थे। इससे पता चलता है कि दो अलग-अलग तरह के परिवहन के आपसी संबंधों को किस कदर महत्ता दी जा रही है।

सितंबर में कॉनकॉर ने आंध्र प्रदेश के कृष्णापत्तनम बंदरगाह से बंगलादेश के चटगांव बंदरगाह तक माल नौवहन सेवा की शुरुआत की। इसके बाद सन 2018 में दोनों देशों के अधिकांश बंदरगाहों को दायरे में लाने के लिए इनलैंड वाटर ट्रांजिट ऐंड ट्रेड प्रोटोकॉल की शुरुआत हुई। ये कदम अपने आप में छोटे हैं लेकिन लॉजिस्टिक्स के क्षेत्र में बन रही व्यापक योजना की दृष्टि से ये काफी मायने रखते हैं। सड़क तथा रेल के अलावा अन्य मार्गों से माल ढुलाई की सुविधा लागत कम करने तथा भारतीय वस्तुओं को विश्व बाजार में अधिक से अधिक प्रतिस्पर्धी बनाने की दृष्टि से अहम है। अब तक जल मार्गों के इस प्रयोग पर ध्यान नहीं दिया गया था।

सड़क मार्ग से माल वहन की लागत प्रति टन किलोमीटर 2.58 रुपये पड़ती है जबकि रेल से यह 1.41 रुपये प्रति टन-किमी और जलमार्ग से 1.06 रुपये प्रति टन-किमी पड़ती है। इसके बावजूद देश में मालवहन का अधिकांश हिस्सा यानी करीब 60 फीसदी हिस्सा सड़क मार्ग के माध्यम से ढोया जाता है। चीन में मालवहन में सड़क की हिस्सेदारी 24 प्रतिशत और जर्मनी में महज 11 प्रतिशत है। सड़क मार्ग पर जरूरत से अधिक निर्भरता के कारण हमारे देश में किसी उत्पाद के अंतिम मूल्य में लॉजिस्टिक्स की हिस्सेदारी 18 प्रतिशत तक है। विकसित देशों में यह बमुश्किल 9 से 10 प्रतिशत है। इतना ही नहीं सड़क परिवहन की तुलना में जलमार्ग से होने वाले परिवहन में प्रदूषण भी अत्यंत कम होता है।

ऐसे बदलाव की आवश्यकता सरकार बहुत लंबे समय से महसूस कर रही थी। वर्ष 2015 में उसने महत्वाकांक्षी सागरमाला परियोजना की शुरुआत की थी। इस परियोजना के तहत जलमार्गों में मालवहन की सुविधा विकसित करने का लक्ष्य रखा गया। इस परियोजना में नए बंदरगाहों का विकास करना, बंदरगाहों का आपसी संपर्क कायम करना और उनके आसपास औद्योगिक गतिविधियों को बढ़ावा देना शामिल था। इस प्रकार का संचार स्थापित करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। जलमार्गों के इस्तेमाल से लागत में होने वाली बचत गंवाई जा सकती है अगर जहाजों को टर्मिनलों पर खड़े होकर माल को ट्रक या रेल से जहाज पर पहुंचाए जाने की प्रतीक्षा करनी पड़ी।

चूंकि सागरमाला परियोजना की शुरुआत के बाद से कई अन्य सुधार भी शुरू किए गए हैं। केंद्रीय सड़क फंड अधिनियम में 2017 में संशोधन किया गया ताकि कुल संग्रहीत फंड के 2.5 फीसदी हिस्से का इस्तेमाल जलमार्ग विकास के लिए किया जाए। भारत में इस वक्त 14,500 किमी ऐसा जलमार्ग है जिस पर परिवहन किया जा सकता है। गत वर्ष के आरंभ में भारत सरकार ने नियमों को शिथिल करके विदेशी कंटेनर जहाजों को स्थानीय तटीय मार्गों पर माल ढुलाई करने की अनुमति दे दी थी। सरकार ने 1,500-2,000 टन भारवहन वाले जहाजों के नौवहन को लेकर जल मार्ग विकास परियोजना तैयार की है ताकि राष्ट्रीय जलमार्ग-1 में हल्दिया से वाराणसी के बीच वाणिज्यिक परिवहन हो सके। इस परियोजना की लागत 5,369 करोड़ रुपये है।

अनुमान है कि यह परियोजना 2023 तक पूरी हो जाएगी। कॉनकॉर के रूप में तटीय नौवहन की शुरुआत के चंद महीने पहले इस क्षेत्र में उस समय एक बड़ी उपलब्धि हासिल की गई जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने वाराणसी में एमवी रवींद्रनाथ टैगोर नामक जहाज का स्वागत किया। इस जहाज में पेय पदार्थ बनाने वाली कंपनी पेप्सी का 16 ट्रक माल कोलकाता से ढो कर लाया गया था। चार वर्ष की अवधि में सागरमाला परियोजना में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई है। सरकार का दावा है कि सितंबर तक इस योजना के अधीन 31,447 करोड़ रुपये मूल्य की 125 परियोजनाएं पूरी हो चुकी हैं। इसमें एन्नोर और मुंद्रा बंदरगाहों पर एलएनजी टर्मिनल (प्रत्येक की लागत करीब 5,000 करोड़ रुपये) और 6,600 करोड़ रुपये की लागत से जेएनपीटी बंदरगाह का उन्नयन शामिल हैं। परंतु अभी भी यह शुरुआती दौर है क्योंकि कुल मिलाकर 5.7 लाख करोड़ रुपये मूल्य की 1,314 परियोजनाएं अभी भी पाइपलाइन में हैं।

गत वर्ष सामने आए क्रिसिल के जगन्नारायण पद्मनाभन और सुदीप्त साहा के एक अनुमान के मुताबिक अगले कुछ वर्षों में जल परिवहन क्षेत्र में तकरीबन 90,000 करोड़ रुपये का निवेश करना होगा। लेखकों ने जल परिवहन को प्रोत्साहन देने के लिए कर सब्सिडी देने की बात की थी। साथ ही जमीन पर स्थित टर्मिनलों पर कार्गो के किफायती निपटान की बात भी इसमें शामिल थी। राष्ट्रीय जलमार्गों के आसपास स्थित उद्योगों को प्रोत्साहन देने को भी एक विकल्प बताया गया है। दूसरी ओर सरकार कोयला तथा अन्य ज्वलनशील पदार्थों के सड़क मार्ग से परिवहन पर भारी भरकम कर भी लगा सकती है। ऐसा करके वह ट्रांसपोर्टों को लंबी दूरी के सफर के लिए जलमार्गों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित कर सकती है। बहुत लंबे समय तक ध्यान इस बात पर केंद्रित था कि नौवहन कंपनियों को सड़क से रेल मार्ग की ओर स्थानांतरित किया जाए। परंतु सागरमाला परियोजना में निवेश बढ़ने तथा तमाम अन्य जरूरी नीतिगत बदलावों को मंजूरी मिलने के साथ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वास्तव में जलमार्ग एक ऐसा क्षेत्र है जिसकी अनदेखी की जाती रही है। अब इस पर वह ध्यान दिया जा रहा है जिसके वे हकदार हैं। परंतु इस दिशा में और जोरदार तरीके से प्रयास करने की आवश्यकता है।

## क्या जातिवाद और जातीयता का कभी अंत होगा?

**बद्री नारायण**

अगर आप किसी हाईवे पर यात्रा कर रहे हों, तो आपके सामने जा रहे वाहन के पीछे जातिगत गर्व एवं अस्मिता से जुड़ी कुछ बातें लिखी मिल जाएंगी। क्षत्रीय, ब्राह्मण, यदुवंशी, ब्रह्म समाज, जाटव दा पुत्र, जट्ट दा पुत्र जैसी पंक्तियां लिखी मिल जाएंगी। कुछ वाहनों पर भगवान हनुमान, कहीं साईं बाबा, तो कहीं संत रविदास का चित्र बना मिल जाएगा। आजकल सोशल साइट्स पर विभिन्न जातियों के वाट्सएप ग्रुप, फेसबुक ग्रुप और पेज इत्यादि भी सक्रिय हैं। क्या ये संकेत हैं कि विकसित, नागर, मध्यवर्गीय समाज में नव धनवान हो रहे लोगों में जाति या जातीय प्रदर्शन की प्रवृत्ति बढ़ रही है? पहले माना जा रहा था कि विकसित मध्यवर्ग के विकास व विस्तार के बाद जाति भाव एवं जातीय अस्मिता की चाह कम होगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। सार्वजनिक रूप से अपने जातिगत भाव के प्रदर्शन की बढ़ती प्रवृत्ति बताती है कि बेहतर जीवन प्राप्त करने के साथ-साथ शायद अस्मिता की चाह भी बढ़ती जा रही है। यह अस्मिता चाहे जाति की हो, धर्म की हो, या दोनों की।

यह माना जाता था कि गरीबों और पिछड़ों का जीवन जैसे-जैसे बेहतर होगा, जाति एवं जातिवाद की राजनीति कमजोर होगी, लेकिन जमीन पर कुछ और होता दिख रहा है। मध्यवर्गीय भाव आते ही हममें अस्मिता निर्माण एवं प्रदर्शन का भाव जगने लगता है। जाति भाव होना और जातीय अस्मिता का भाव होना दो अलग-अलग प्रक्रियाएं हैं। हालांकि जातीय अस्मिता को सामग्री जाति भाव से ही मिलती है, किंतु जाति भाव जहां लोगों के रोजमर्रा के जीवन में सहज पहचान के रूप में कार्य करता है, वहीं जातीय अस्मिता जाति भाव को रूढ़ करके उसे आक्रामक बना देती है। जैसे-जैसे लोगों, समुदायों एवं समाजों के विविध वर्गों में धन-धान्य आता जा रहा है, जीवन में बेहतरी आती जा रही है, हमें अपनी पहचान नए रूप में गढ़ने व उसका दिखावा करने की जरूरत महसूस होने लगी है। यह ठीक है कि बढ़ते शहरीकरण व विकास की आकांक्षा के कारण जाति-व्यवस्था में बहिष्कार की प्रवृत्ति कम हुई है। आपसी संवाद का भाव बढ़ा है। शहरी जीवन में छुआछूत की प्रवृत्ति भी कम हुई है।

बाबा साहब आंबेडकर ने यह चाहा था कि हमें एक दिन बूंद के समान मानवीयता के विशाल समुद्र में समा जाना चाहिए, किंतु दुर्योग से बाबा साहब की चाहत के विपरीत हम आज समाज रूपी समुद्र में खुद को खोने से बचाने के जतन में लग गए हैं। शायद हम सर्व-समाज एवं सम-समाज का हिस्सा तो होना चाहते हैं, किंतु हम अपनी पृथकता भी बचाए रखना चाहते हैं। इसे बचाए रखने का एक तरीका है अपनी विशिष्टता का निर्माण। अपनी विशिष्टता के निर्माण का स्रोत कई बार हम आधुनिकता से प्राप्त करते हैं और कई बार पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था की रीति-नीति और तरीकों से। जीवन में सफल होना, अच्छी नौकरी, अच्छा रहन-सहन हमें हमारी विशिष्टता तो प्रदान करते ही हैं, साथ ही, हम जातीय विशिष्टता, जातीय गर्व का भी इस दिशा में इस्तेमाल करते हैं। आधुनिकता से हमें तकनीक की ताकत मिलती है, जिससे हम अपनी जातिगत या जातीय पहचान मजबूत करने लगते हैं।



हमारे आधुनिक जीवन प्रणाली की देन है- शासन-प्रशासन के क्षेत्र में जनतंत्र का विकास। जनतंत्र का एक महत्वपूर्ण रूप है- चुनावी जनतंत्र। चुनावी जनतंत्र में गोलबंदी के कई तत्व, प्रकार और प्रेरणाएं होती हैं। जाति व धर्म ऐसे ही तत्व हैं, जिनसे हमारे चुनावी जनतंत्र में वर्षा से गोलबंदी का काम साधा जाता रहा है। इस प्रकार हमारे चुनावी जनतंत्र ने भी जातीय भाव को मजबूत किया है। टिकट वितरण से लेकर सरकार गठन तक जातिगत पहचान का महत्व हम खुलेआम देखते हैं। जाति की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है।

आज फिर से जाति गर्व के लोगगीत सुने जा सकते हैं। शहरों में होने वाले आयोजनों में अनेक प्रकार के बिरहा एवं लोक गीतों को सुना जा सकता है, जिनमें जातीय गर्व का वर्णन होता है। इसी प्रकार, धार्मिक पहचान के गुणगान भी आसानी से मिल जाएंगे। गौर करने की बात है, जब हम खुद को गौरवान्वित करते हैं, तो इस प्रक्रिया में दूसरों को कई बार नीचा भी दिखाते हैं। भविष्य में क्या होगा, क्या भारत में आधुनिक तरह से जातिभाव बढ़ेगा या उसके बनने और बढ़ने की प्रक्रिया कमजोर होगी?



*Date:18-11-19*

## **Back to the Rajapaksas**

***With a decisive mandate, Gotabaya Rajapaksa should work to prove detractors wrong***

### **Editorial**

The convincing victory of Gotabaya Rajapaksa in Sri Lanka's presidential election was not entirely unexpected. His main rival Sajith Premadasa's spirited campaign was not enough to overcome the anti-incumbency mood in much of southern Sri Lanka. An overwhelming majority of Tamils and Muslims voted for Mr. Premadasa, largely over fears that Gotabaya Rajapaksa evokes from his days as Defence Secretary under his brother, former President Mahinda Rajapaksa. If Tamils blamed the Rajapaksas for the death of thousands of civilians at the end of the civil war in 2009, and the subsequent reluctance to probe war crimes and disappearances, Muslims were worried about being targeted by majoritarian elements backed by Gotabaya Rajapaksa. But in a country where over 70% of the population is Sinhalese, Mr. Premadasa required a significant chunk of the majority vote too. Besides, there were other factors behind Gotabaya Rajapaksa's impressive performance in the south: anxieties arising from the state of the economy, revulsion towards unabated corruption and fears set off by the Easter Sunday bombings. Events since President Maithripala Sirisena dismissed Prime Minister Ranil Wickremesinghe in October 2018, leading to a constitutional crisis, made this election a referendum on the failures of the power-sharing arrangement between the two leaders.

Mr. Sirisena and Mr. Wickremesinghe had come together in a unique alliance of rival parties to defeat Mr. Rajapaksa in 2015. There was much euphoria in the early days, as people sensed a return to the rule of law and a departure from the authoritarian tendencies of the Rajapaksa era. They felt the days of the

subversion of independent institutions were over. However, with the bitter parting of ways, especially in the backdrop of corruption allegations and poor economic performance, the arrangement collapsed. The worst fallout was perhaps the April 21 bombings, which happened despite advance intelligence, indicating a staggering breakdown of communication within the government. This is a sobering moment for all Sri Lankans. A mandate for reform and progress has been frittered away. Those blamed for the past democratic deficit are back in power. The country is nowhere near the promised constitutional reforms, either to address minority concerns or to abolish the executive presidency. Fears that the two-term limit on running for President, as well as constitutional curbs on the chief executive's powers, will be removed in future are not misplaced. The new President should strive to allay such fears and work on strengthening the economy and ethnic harmony. He should refrain from antagonising the international community. In relations with India, he should assuage concerns that he would promote the interests of China to the detriment of India's. To truly make a mark, Gotabaya Rajapaksa should aim to disappoint his detractors.

---